

क्या इस्लाम तलवार के दम पर फैला ?

क्या इस्लाम तलवार के दम पर फैला?

कुरआन, सहीह हदीस और प्रमाणिक इतिहास की रोशनी में एक विस्तृत अध्ययन अल्लाह के नाम से, जो अत्यंत कृपालु और दयावान है।

“इस्लाम तलवार के दम पर फैला” यह आरोप आधुनिक समय में सबसे अधिक दोहराए जाने वाले आरोपों में से एक है। अक्सर इस दावे के समर्थन में कुछ युद्धों का उल्लेख किया जाता है, जबकि कुरआन, सहीह हदीस और ऐतिहासिक स्रोतों का व्यापक अध्ययन अधिक जटिल और विविध तस्वीर प्रस्तुत करता है।

इस विषय को समझने के लिए सबसे पहले दो अलग-अलग बातों में अंतर करना आवश्यक है :

- इस्लामी राज्य का राजनीतिक विस्तार (Political Expansion)
- व्यक्तियों द्वारा स्वेच्छा से इस्लाम स्वीकार करना (Religious Conversion)

इतिहास में अनेक क्षेत्रों पर मुस्लिम शासन स्थापित हुआ, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं था कि वहाँ के सभी लोगों ने तुरंत या बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार कर लिया। कई क्षेत्रों में गैर-मुस्लिम समुदाय सदियों तक अपने धर्म पर बने रहे।

1. धर्म में कोई जबरदस्ती नहीं

कुरआन इस विषय पर स्पष्ट सिद्धांत प्रस्तुत करता है। अल्लाह तआला फरमाता है :

لَا إِكْرَاهَ فِي الدِّينِ ۚ قَدْ تَبَيَّنَ الرُّشْدُ مِنَ الْغَيِّ

“धर्म के मामले में कोई जबरदस्ती नहीं है। निस्संदेह सत्य मार्ग गुमराही से स्पष्ट हो चुका है।” [सूरह अल-बकरह 2:256]

इब्न कसीर (रहिमहुल्लाह) ने इस आयत की व्याख्या करते हुए लिखा कि सत्य स्पष्ट हो जाने के बाद किसी व्यक्ति को इस्लाम स्वीकार करने के लिए विवश करना उचित नहीं है।

2. यदि अल्लाह चाहता तो सभी ईमान ले आते

وَلَوْ شَاءَ رَبُّكَ لَأَمَنَّ مِنَ فِي الْأَرْضِ كُلُّهُمْ جَمِيعًا

“यदि तुम्हारा रब चाहता तो धरती के सभी लोग ईमान ले आते।” [सूरह यूनूस 10:99]

यह आयत बताती है कि ईमान इंसान के चुनाव से जुड़ा हुआ है और उसे बलपूर्वक थोपना इस्लामी शिक्षा का मूल उद्देश्य नहीं बताया गया है।

3. नबी ﷺ का कार्य केवल संदेश पहुँचाना था

कुरआन बार-बार स्पष्ट करता है कि अल्लाह के रसूल ﷺ का मूल दायित्व लोगों तक अल्लाह का संदेश पहुँचाना था, न कि उन्हें बलपूर्वक ईमान स्वीकार कराने के लिए विवश करना।

अल्लाह तआला फरमाता है :

فَأِنَّمَا عَلَيْكَ الْبَلَاغُ وَعَلَيْنَا الْحِسَابُ

“आप पर केवल संदेश पहुँचाना है और हिसाब लेना हमारे जिम्मे है।” [सूरह अर-रअद 13:40]

एक अन्य स्थान पर अल्लाह तआला फरमाता है :

فَذَكِّرْ إِنَّمَا أَنْتَ مُذَكِّرٌ ۚ لَسْتَ عَلَيْهِمْ بِمُصَيِّرٍ

“तो आप नसीहत करते रहिए। आप तो केवल नसीहत करने वाले हैं। आप उन पर दबाव डालने वाले नहीं हैं।” [सूरह अल-ग़ाशियह 88:21-22]

इन आयतों से स्पष्ट होता है कि नबी ﷺ का दायित्व सत्य का संदेश पहुँचाना था। किसी व्यक्ति के दिल में ईमान पैदा करना या उसे विवश करना उनका कार्य नहीं था।

4. मक्का का दौर : 13 वर्ष बिना युद्ध

इस्लाम के प्रारम्भिक 13 वर्ष मक्का में बीते। यह समय इस विषय को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। उस समय :

कोई इस्लामी राज्य नहीं था।

मुसलमान अल्पसंख्यक थे।
युद्ध की अनुमति नहीं थी।
मुसलमानों के पास सैन्य शक्ति नहीं थी।

इसके बावजूद अनेक लोगों ने अपनी इच्छा से इस्लाम स्वीकार किया। इनमें प्रमुख सहाबा शामिल हैं:

अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु
उस्मान इब्न अफ़फ़ान रज़ियल्लाहु अन्हु
अब्दुर्रहमान इब्न औफ़ रज़ियल्लाहु अन्हु
तल्हा इब्न उबैदुल्लाह रज़ियल्लाहु अन्हु
ज़ुबैर इब्न अल-अव्वाम रज़ियल्लाहु अन्हु

इनमें से किसी ने भी तलवार या दबाव के कारण इस्लाम स्वीकार नहीं किया। यदि इस्लाम वास्तव में तलवार के बल पर फैलता, तो मक्का के इन 13 वर्षों में इस्लाम का प्रसार लगभग असंभव होता।

5. मुसलमानों पर हुए अत्याचार

मक्का में मुसलमानों ने लंबे समय तक अत्याचार सहन किए। उन पर :

शारीरिक यातनाएँ दी गईं।
आर्थिक बहिष्कार किया गया।
सामाजिक बहिष्कार किया गया।
कई सहाबा को शहीद कर दिया गया।
अनेक लोगों को अपना घर छोड़कर हिजरत करनी पड़ी।

इन परिस्थितियों के बावजूद नबी ﷺ ने किसी को बलपूर्वक मुसलमान बनाने का प्रयास नहीं किया।

6. इस्लाम में युद्ध की अनुमति क्यों दी गई ?

कुछ लोग केवल इस बात का उल्लेख करते हैं कि इस्लाम में युद्ध हुए, लेकिन यह नहीं बताते कि युद्ध की अनुमति किन परिस्थितियों में दी गई। कुरआन में पहली बार युद्ध की अनुमति इस प्रकार दी गई। अल्लाह तआला फरमाता है :

أُذِنَ لِلَّذِينَ يُقَاتَلُونَ بِأَنَّهُمْ ظَلَمُوا

“जिन लोगों के विरुद्ध युद्ध किया जा रहा है, उन्हें (अब) युद्ध की अनुमति दी गई है क्योंकि उन पर अत्याचार हुआ है।” [सूरह अल-हज्ज 22:39]

यह आयत बताती है कि अनुमति का कारण था :

- अत्याचार
- उत्पीड़न
- आत्मरक्षा

न कि लोगों को जबरन मुसलमान बनाना।

7. युद्ध के भी नैतिक नियम

कुरआन मुसलमानों को युद्ध के समय भी सीमाएँ पार करने से रोकता है। अल्लाह तआला फरमाता है :

وَقَاتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ الَّذِينَ يُقَاتِلُونَكُمْ وَلَا تَعْتَدُوا

“अल्लाह के मार्ग में उनसे युद्ध करो जो तुमसे युद्ध करते हैं, लेकिन सीमा का उल्लंघन मत करो।”

[सूरह अल-बकरह 2:190]

इस आयत में दो महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं:

- युद्ध केवल उन लोगों के विरुद्ध जो युद्ध करें।
- अन्याय और अतिक्रमण वर्जित है।

यदि उद्देश्य केवल बलपूर्वक धर्म परिवर्तन होता, तो इस प्रकार की सीमाएँ निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं होती।

8. सहीह हदीस में युद्ध की नैतिकता

रसूलुल्लाह ﷺ ने युद्ध के दौरान भी महिलाओं और बच्चों की हत्या से स्पष्ट रूप से मना किया। रसूलुल्लाह (ﷺ) ने फरमाया :

لَا تَقْتُلُوا امْرَأَةً وَلَا صَبِيًّا

“किसी स्त्री और किसी बच्चे की हत्या मत करो।” [सहीह मुस्लिम, हदीस 1744]

एक अन्य हदीस में नबी ﷺ ने फरमाया :

لَا تَغْدُرُوا وَلَا تُمَثِّلُوا

“विश्वासघात मत करो और शवों का अंग-भंग मत करो।” [सहीह मुस्लिम, हदीस 1731]

इन निर्देशों से स्पष्ट होता है कि इस्लाम ने युद्ध को भी नैतिक सीमाओं में रखा और गैर-युद्धरत लोगों की सुरक्षा पर बल दिया।

9. मक्का विजय : क्षमा का ऐतिहासिक उदाहरण

8 हिजरी में मुसलमानों ने मक्का में प्रवेश किया। यही वह नगर था जिसने :

- नबी ﷺ को अपना शहर छोड़ने पर मजबूर किया।
- मुसलमानों पर अत्याचार किए।
- अनेक युद्ध किए।

ऐसी स्थिति में सामान्यतः विजेता प्रतिशोध लेते हैं, लेकिन नबी ﷺ का व्यवहार भिन्न था। एक प्रसिद्ध रिवायत में आता है :

أَذْهِبُوا فَأَنْتُمُ الطُّلُقَاءُ

“जाओ, तुम सब आज्ञाद हो।”

यह रिवायत सीरत की पुस्तकों में मिलती है। हालांकि इसकी सनद पर विद्वानों में मतभेद है और शैख अल्बानी ने इसे जर्ईफ़ कहा है। इसलिए इसे ऐतिहासिक प्रसंग के रूप में उद्धृत करना अधिक उपयुक्त है, न कि स्वतंत्र प्रमाण के रूप में।

मक्का विजय के बाद भी सभी लोगों को बलपूर्वक मुसलमान नहीं बनाया गया। यह घटना इस दावे के विपरीत एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत करती है।

10. नजरान के ईसाई : धार्मिक संवाद और सुरक्षा

9 हिजरी में नजरान (यमन) के ईसाइयों का एक प्रतिनिधिमंडल मदीना आया। नबी ﷺ ने उनके साथ धार्मिक संवाद किया और उनके प्रतिनिधियों को अपनी बात रखने का अवसर दिया। इस घटना के संबंध में सीरत और इतिहास की पुस्तकों में उल्लेख मिलता है कि :

- उन्हें अपने धार्मिक विचार प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई।
- उनके साथ संवाद सम्मानपूर्वक किया गया।
- उनके धार्मिक अधिकारों और सुरक्षा के संबंध में एक समझौता किया गया।
- उनके धार्मिक नेतृत्व (जैसे बिशप और पादरी) के संरक्षण का उल्लेख मिलता है।

यह घटना दर्शाती है कि मतभेद होने के बावजूद संवाद और समझौते का मार्ग अपनाया गया। [इब्न हिशाम, 12-1222222-2222222222; इब्न कसीर, 12-1222222 12-1222222]

11. जिज्या का वास्तविक उद्देश्य

जिज्या को लेकर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि इसका उद्देश्य लोगों को इस्लाम स्वीकार करने के लिए विवश करना था। लेकिन शास्त्रीय इस्लामी विधि (फ़िक्ह) में जिज्या को एक नागरिक कर (tax) के रूप में समझाया गया है, जो कुछ गैर-मुस्लिम प्रजाजनों पर लागू होता था। पारंपरिक फ़िक्ह के अनुसार :

- यह केवल कुछ वयस्क, सक्षम पुरुषों पर लागू होती थी।
- महिलाएँ, बच्चे, अत्यंत वृद्ध, निर्धन और कई अन्य वर्ग इससे मुक्त थे।
- मुसलमानों पर जकात अनिवार्य थी, जबकि गैर-मुस्लिमों पर जिज्या लागू होती थी।
- इसके बदले राज्य सुरक्षा और कुछ नागरिक दायित्वों का निर्वाह करता था।

यदि किसी राज्य का उद्देश्य केवल बलपूर्वक धर्म परिवर्तन होता, तो कर व्यवस्था बनाए रखने के बजाय सभी को एक ही धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जा सकता था। ऐतिहासिक रिकॉर्ड विभिन्न क्षेत्रों में लंबे समय तक गैर-मुस्लिम समुदायों के बने रहने का संकेत देते हैं। [अबू यूसुफ, 122222 12-1222222; अल-मावरदी, 12-122222 12-12222222222222]

12. मिस्र, सीरिया और भारत का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि मुस्लिम शासन स्थापित होने के बाद भी अनेक क्षेत्रों में गैर-मुस्लिम समुदाय लंबे समय तक अपने धर्म पर बने रहे।

मिस्र: मुस्लिम शासन के बाद भी कॉप्टिक ईसाई समुदाय सदियों तक अपनी धार्मिक पहचान बनाए रहा।

सीरिया: सीरिया में भी ईसाई समुदाय मुस्लिम शासन के लंबे काल तक मौजूद रहा और विभिन्न कालों में उसकी उल्लेखनीय जनसंख्या

रही।

भारत : भारतीय उपमहाद्वीप में कई मुस्लिम सल्तनतों और बाद में मुगल शासन के बावजूद अधिकांश जनसंख्या हिंदू बनी रही। साथ ही जैन, सिख, बौद्ध और अन्य धार्मिक समुदाय भी विद्यमान रहे।

इन उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा कि कहीं भी बलपूर्वक धर्म परिवर्तन कभी नहीं हुआ, क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों और शासकों की नीतियाँ अलग-अलग थीं। लेकिन यह ऐतिहासिक तथ्य अवश्य है कि व्यापक और सार्वभौमिक स्तर पर सभी गैर-मुस्लिमों का जबरन धर्म परिवर्तन नहीं हुआ।

13. दक्षिण-पूर्व एशिया में इस्लाम का प्रसार

आज इंडोनेशिया विश्व का सबसे अधिक मुस्लिम आबादी वाला देश है। मलेशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के अन्य क्षेत्रों में भी इस्लाम का व्यापक प्रसार हुआ। इतिहासकारों के अनुसार, इन क्षेत्रों में इस्लाम मुख्यतः निम्न माध्यमों से पहुँचा :

- अरब और भारतीय मुस्लिम व्यापारियों के माध्यम से
- दावत और धार्मिक शिक्षा
- स्थानीय समाज के साथ सांस्कृतिक संपर्क
- सूफ़ी परंपराओं के प्रभाव
- नैतिक एवं सामाजिक आचरण

इन क्षेत्रों में किसी बड़े मुस्लिम सैन्य विजय अभियान के बिना भी इस्लाम का विस्तार हुआ।

14. दावत का तरीका : आमंत्रण, न कि बल प्रयोग

रसूलुल्लाह ﷺ ने अपने प्रतिनिधियों को लोगों तक इस्लाम पहुँचाने का निर्देश देते हुए फरमाया :

ادْعُهُمْ إِلَى الْإِسْلَامِ

“उन्हें इस्लाम की ओर आमंत्रित करो।” [सहीह मुस्लिम, हदीस 1731]

यह हदीस इस्लामी दावत के मूल सिद्धांत को स्पष्ट करती है—आमंत्रण, शिक्षा और संवाद।

15. इस्लामी विद्वानों का दृष्टिकोण

अनेक प्रमुख इस्लामी विद्वानों ने यह स्पष्ट किया है कि किसी व्यक्ति को बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार कराना इस्लामी सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है।

इब्न तैमिय्या (रहिमहुल्लाह) : उन्होंने लिखा कि किसी व्यक्ति को इस्लाम स्वीकार करने के लिए विवश करना वैध नहीं है। [११-११११११, खंड 28]

मुहम्मद बिन अब्दुल वहहाब (रहिमहुल्लाह) : उन्होंने दावत, तौहीद और शिक्षा पर बल दिया तथा लोगों तक सत्य पहुँचाने को प्राथमिकता दी।

शैख अब्दुल अजीज़ इब्न बाज़ (रहिमहुल्लाह) : उन्होंने सूरह अल-बकरह (2:256) की व्याख्या करते हुए लिखा कि इस्लाम किसी व्यक्ति को मजबूर करके मुसलमान बनाने की अनुमति नहीं देता।

शैख मुहम्मद बिन सालेह अल-उसैमीन (रहिमहुल्लाह) : उन्होंने भी “धर्म में कोई जबरदस्ती नहीं” के सिद्धांत को कुरआन की मूल शिक्षाओं में से एक बताया।

16. “तलवार की आयत” (सूरह अत-तौबा 9:5) का संदर्भ

आलोचनाओं में अक्सर सूरह अत-तौबा की पाँचवीं आयत का उल्लेख किया जाता है। किंतु किसी भी आयत को उसके ऐतिहासिक और पाठ्य (textual) संदर्भ के साथ समझना आवश्यक है। कई प्रमुख मुफस्सिरो के अनुसार यह आयत उन अरब मुश्रिक समूहों के संदर्भ में अवतरित हुई जिन्होंने :

- संधियाँ तोड़ी,
- मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध छेड़ा,
- और शांति समझौतों का उल्लंघन किया।

उसी प्रसंग में अगली आयत कहती है :

وَإِنْ أَحَدٌ مِّنَ الْمُشْرِكِينَ اسْتَجَارَكَ فَأَجْرُهُ

“यदि कोई मुश्रिक तुमसे शरण माँगे, तो उसे शरण दो ताकि वह अल्लाह का वचन सुन सके ; फिर उसे उसके सुरक्षित स्थान तक पहुँचा दो।” [सूरह अत-तौबा 9:6]

यह आयत दर्शाती है कि युद्ध संबंधी आयतों के साथ भी शरण माँगने वाले व्यक्ति की सुरक्षा का निर्देश दिया गया है।

17. क्या इस्लाम का प्रसार तलवार से हुआ ? – ऐतिहासिक परीक्षण

यदि यह दावा किया जाए कि इस्लाम तलवार के बल पर फैला, तो इतिहास के अनेक तथ्य इस दावे के साथ पूरी तरह मेल नहीं खाते। उदाहरण के लिए :

- भारत में कई सदियों तक विभिन्न मुस्लिम शासनों के बावजूद हिंदू बहुसंख्यक रहे।
- मिस्र में कॉप्टिक ईसाई समुदाय आज तक मौजूद है।
- सीरिया और इराक में ईसाई समुदाय लंबे समय तक बने रहे।
- विभिन्न मुस्लिम शासनों के अंतर्गत यहूदी समुदाय भी कई क्षेत्रों में सदियों तक निवास करते रहे।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक शासन और व्यक्तिगत धार्मिक आस्था दो अलग-अलग विषय हैं। किसी क्षेत्र पर मुस्लिम शासन स्थापित होना अपने आप यह सिद्ध नहीं करता कि वहाँ के सभी लोगों का बलपूर्वक धर्म परिवर्तन हुआ।

18. इस्लाम की दावत का तरीका : हिकमत, दया और संवाद

कुरआन लोगों को इस्लाम की ओर बुलाने का तरीका भी स्पष्ट करता है।

ادْعُ إِلَى سَبِيلِ رَبِّكَ بِالْحُكْمَةِ وَالْمَوْعِظَةِ الْحَسَنَةِ وَجَادِلْهُمْ بِالَّتِي هِيَ أَحْسَنُ

“अपने रब के मार्ग की ओर हिकमत और उत्तम उपदेश के साथ बुलाइए तथा उनसे ऐसे तरीके से वाद-विवाद कीजिए जो सबसे उत्तम हो।” [सूरह अन-नहल 16:125]

इस आयत में तीन सिद्धांत बताए गए हैं:

- हिकमत (बुद्धिमत्ता)
- उत्तम उपदेश
- श्रेष्ठ संवाद

ध्यान देने योग्य बात यह है कि यहाँ लोगों को विवश करने का नहीं, बल्कि समझाने और संवाद करने का निर्देश दिया गया है।

19. कुरआन विचार और प्रमाण की ओर बुलाता है

कुरआन अनेक स्थानों पर मनुष्य को सोचने, समझने और प्रमाण पर विचार करने का निमंत्रण देता है।

أَفَلَا تَعْقُلُونَ

“क्या तुम बुद्धि से काम नहीं लेते ?”

أَفَلَا يَتَذَكَّرُونَ الْقُرْآنَ

“क्या वे कुरआन में गहराई से विचार नहीं करते ?” [सूरह अन-निसा 4:82]

قُلْ هَاتُوا بُرْهَانَكُمْ

“कह दीजिए : यदि तुम सच्चे हो तो अपना प्रमाण प्रस्तुत करो।” [सूरह अल-बकरह 2:111]

ये आयतें दर्शाती हैं कि इस्लामी शिक्षा में तर्क, चिंतन और प्रमाण का महत्वपूर्ण स्थान है।

20. नबी ﷺ ने किसी को इस्लाम स्वीकार करने के लिए विवश नहीं किया

एक प्रसिद्ध हदीस में एक बंदू (देहाती) व्यक्ति नबी ﷺ के पास आया और इस्लाम के मूल कर्तव्यों के बारे में पूछा। नबी ﷺ ने उसे बताया : पाँच समय की नमाज़, रमज़ान के रोज़े, ज़कात.... उस व्यक्ति ने कहा : **“मैं इससे अधिक नहीं करूँगा और इससे कम भी नहीं करूँगा।”**

नबी ﷺ ने उसके जाने के बाद फरमाया :

أَفْلَحَ إِنْ صَدَقَ

“यदि यह अपने कथन में सच्चा है तो सफल हो जाएगा।” [सहीह अल-बुखारी : 46, सहीह मुस्लिम : 11]

इस घटना में न तो कोई दबाव था और न ही किसी प्रकार की जबरदस्ती।

21. मुनाफिकों के साथ व्यवहार

मदीना में ऐसे लोग भी थे जो बाहरी रूप से मुसलमान थे, लेकिन उनके दिलों में ईमान नहीं था। कुरआन में उनके बारे में पूरा सूरह अल-मुनाफिकून अवतरित हुआ। फिर भी नबी ﷺ ने उन्हें बलपूर्वक “सच्चा मुसलमान” बनाने का प्रयास नहीं किया। रसूलुल्लाह ﷺ ने फरमाया : **لَا يَتَحَدَّثُ النَّاسُ أَنَّ مُحَمَّدًا يَقْتُلُ أَصْحَابَهُ**

“ऐसा न हो कि लोग कहने लगे कि मुहम्मद अपने साथियों को मारते हैं।” [सहीह अल-बुखारी : 4905, मुस्लिम : 2584]

22. मदीना का संविधान और यहूदियों के अधिकार

मदीना आने के बाद नबी ﷺ ने मुसलमानों, यहूदियों और अन्य कबीलों के बीच एक सामाजिक-राजनीतिक समझौता स्थापित किया, जिसे सहीफ़ा-ए-मदीना कहा जाता है। इस समझौते में विभिन्न समुदायों के अधिकारों का उल्लेख मिलता है। मुख्य बिंदु :

- प्रत्येक समुदाय को अपने धर्म पर रहने की स्वतंत्रता।
- जान और माल की सुरक्षा।
- बाहरी आक्रमण की स्थिति में पारस्परिक सहयोग।
- न्यायपूर्ण व्यवस्था का पालन।

यह समझौता प्रारम्भिक इस्लामी शासन में विभिन्न धार्मिक समुदायों के सह-अस्तित्व का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उदाहरण माना जाता है।

23. अहले किताब से संवाद

कुरआन, यहूदियों और ईसाइयों (अहले किताब) से संवाद के लिए भी संतुलित भाषा अपनाने का निर्देश देता है। अल्लाह तआला फरमाता है :

قُلْ يَا أَهْلَ الْكِتَابِ تَعَالَوْا إِلَى كَلِمَةٍ سَوَاءٍ بَيْنَنَا وَبَيْنَكُمْ

“कह दीजिए : ऐ किताब वालों! आओ उस बात की ओर जो हमारे और तुम्हारे बीच समान है।”

[सूरह आले इमरान 3:64]

यह आयत संवाद, साझा मूल्यों और विचार-विमर्श की भावना को प्रोत्साहित करती है।

24. गैर-मुस्लिम माता-पिता के साथ सद्ब्यवहार

यदि किसी व्यक्ति के माता-पिता मुसलमान न हों, तब भी कुरआन उनके साथ अच्छे व्यवहार का आदेश देता है। अल्लाह तआला फरमाता है :

وَإِنْ جَاهِدَاكَ عَلَىٰ أَنْ تُشْرِكَ بِي ... وَصَاحِبُهُمَا فِي الدُّنْيَا مَعْرُوفًا

“यदि वे तुम्हें मेरे साथ किसी को साझी ठहराने के लिए बाध्य करें, तो उनकी बात न मानो ; लेकिन दुनिया में उनके साथ अच्छे ढंग से व्यवहार करो।” [सूरह लुकमान 31:15]

यह आयत बताती है कि धार्मिक मतभेद होने पर भी सदाचार और पारिवारिक सम्मान बनाए रखने का निर्देश दिया गया है।

25. अस्मा बिन्त अबू बक्र (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस

अस्मा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की माता उस समय मुसलमान नहीं थीं। उन्होंने नबी ﷺ से पूछा कि क्या वे अपनी माता के साथ अच्छा व्यवहार करें? रसूलुल्लाह ﷺ ने फरमाया : **نَعَمْ صِلِي أُمَّكَ**

“हाँ, अपनी माँ के साथ अच्छा संबंध बनाए रखो।” [सहीह अल-बुखारी : 2620, सहीह मुस्लिम : 1003]

यह हदीस स्पष्ट करती है कि इस्लाम पारिवारिक संबंधों और सदाचार को धार्मिक मतभेदों के बावजूद महत्व देता है।

26. गैर-मुस्लिमों के साथ न्याय

अल्लाह तआला फरमाता है :

﴿ لَا يَنْهَاكُمُ اللَّهُ عَنِ الَّذِينَ لَمْ يُقَاتِلُوكُمْ فِي الدِّينِ وَلَمْ يُخْرِجُوكُمْ مِّنْ دِيَارِكُمْ أَن تَبَرُّوهُمْ وَتُقْسِطُوا إِلَيْهِمْ إِنَّ اللَّهَ يُحِبُّ الْمُقْسِطِينَ ﴾

“अल्लाह तुम्हें उन लोगों के साथ भलाई और न्याय करने से नहीं रोकता जिन्होंने धर्म के कारण तुमसे युद्ध नहीं किया और न तुम्हें तुम्हारे घरों से निकाला। निःसंदेह अल्लाह न्याय करने वालों को पसंद करता है।”

[सूरह अल-मुत्तहना 60:8]

यह आयत इस विषय में सबसे स्पष्ट प्रमाणों में से एक है। अल्लाह मुसलमानों को उन गैर-मुस्लिमों के साथ :

- भलाई करने,
- न्याय करने,
- और सद्ब्यवहार रखने

का आदेश देता है जिन्होंने उनसे युद्ध नहीं किया।

यदि इस्लाम का उद्देश्य सभी गैर-मुस्लिमों को बलपूर्वक मुसलमान बनाना होता, तो उनके साथ न्याय और भलाई का यह आदेश नहीं दिया जाता।

27. गैर-मुस्लिमों पर अत्याचार की मनाही

रसूलुल्लाह ﷺ ने फरमाया :

أَلَا مَنْ ظَلَمَ مُعَاهِدًا، أَوْ انْتَقَصَهُ، أَوْ كَلَّفَهُ فَوْقَ طَاقَتِهِ، أَوْ أَخَذَ مِنْهُ شَيْئًا بَغَيْرِ طَيْبِ نَفْسٍ، فَأَنَا حَاجِبُهُ يَوْمَ الْقِيَامَةِ

“सुन लो ! जिसने किसी संधिबद्ध गैर-मुस्लिम (मु'आहद) पर अत्याचार किया, उसके अधिकार में कमी की, उसकी क्षमता से अधिक बोझ डाला, या उसकी इच्छा के विरुद्ध उससे कोई चीज ली, तो क्रियामत के दिन मैं स्वयं उसके विरुद्ध मुकदमा लड़ूंगा।”

[सुनन अबू दाऊद, हदीस 3052]

सोचिए, जिस नबी ﷺ ने गैर-मुस्लिम पर अत्याचार करने वाले के विरुद्ध स्वयं खड़े होने की चेतावनी दी

हो, क्या वही लोगों को जबरन मुसलमान बनाने का आदेश दे सकते हैं ?

28. जिहाद का वास्तविक अर्थ

बहुत से लोग “जिहाद” का अर्थ केवल युद्ध समझते हैं, जबकि अरबी भाषा में जिहाद का मूल अर्थ है : प्रयास करना, संघर्ष करना, पूरी शक्ति लगाना। अल्लाह तआला फरमाता है :

وَجَاهِدْهُمْ بِهِ جِهَادًا كَبِيرًا

“और इस (कुरआन) के द्वारा उनके विरुद्ध बड़ा जिहाद करो।” [सूरह अल-फुरकान 25:52]

यह एक मक्की आयत है, जबकि उस समय मुसलमानों को युद्ध की अनुमति भी नहीं मिली थी। इसलिए यहाँ जिहाद का अर्थ है : दावत,

- तर्क, शिक्षा, और कुरआन के संदेश को लोगों तक पहुँचाने का प्रयास। इमाम अत-तबरी ने इस आयत की व्याख्या में लिखा है कि यहाँ जिहाद से अभिप्राय कुरआन के माध्यम से दावत और तर्क प्रस्तुत करना है। [तफ़सीर अत-तबरी, खंड 19, पृष्ठ 157]

29. सबसे बड़ा जिहाद : सत्य की बात कहना

रसूलुल्लाह ﷺ ने फरमाया :

أَفْضَلُ الْجِهَادِ كَلِمَةٌ عَدْلٌ عِنْدَ سُلْطَانٍ جَائِرٍ

“सबसे श्रेष्ठ जिहाद अत्याचारी शासक के सामने सत्य और न्याय की बात कहना है।” [सुनन अत-तिर्मिज़ी, हदीस 2174]

यदि जिहाद का अर्थ केवल तलवार होता, तो नबी ﷺ उसे सत्य बोलने से संबंधित सबसे श्रेष्ठ जिहाद न बताते।

30. नबी ﷺ समस्त संसार के लिए रहमत

अल्लाह तआला फरमाता है :

وَمَا أَرْسَلْنَاكَ إِلَّا رَحْمَةً لِّلْعَالَمِينَ

“और हमने आपको समस्त संसारों के लिए केवल रहमत बनाकर भेजा है।” [सूरह अल-अंबिया

यहाँ अल्लाह ने अपने रसूल ﷺ का परिचय रहमत के रूप में कराया है, न कि जबरदस्ती या बल प्रयोग के माध्यम के रूप में।

31. ताइफ़ का ऐतिहासिक प्रसंग

ताइफ़ के लोगों ने नबी ﷺ का उपहास किया, पत्थर मारे और आपको लहूलुहान कर दिया।

उस समय फ़रिश्ते ने कहा कि यदि आप चाहें तो इन लोगों को दो पहाड़ों के बीच कुचल दिया जाए। लेकिन नबी ﷺ ने फरमाया :

بَلْ أَرْجُو أَنْ يُخْرِجَ اللَّهُ مِنْ أَصْلَابِهِمْ مَنْ يَعْبُدُ اللَّهَ وَحْدَهُ

“नहीं, बल्कि मुझे आशा है कि अल्लाह उनकी संतानों में ऐसे लोग पैदा करेगा जो केवल उसी की इबादत करेंगे।” [सहीह अल-बुखारी, हदीस 3231; सहीह मुस्लिम, हदीस 1795]

यह नबी ﷺ की दया, धैर्य और लोगों के प्रति शुभचिंतन का सर्वोच्च उदाहरण है।

32. कुरआन में स्वतंत्र चयन की घोषणा

अल्लाह तआला फरमाता है :

وَقُلِ الْحَقُّ مِنْ رَبِّكُمْ ۚ فَمَنْ شَاءَ فَلْيُؤْمِنْ وَمَنْ شَاءَ فَلْيُكْفُرْ

“कह दीजिए : सत्य तुम्हारे रब की ओर से है ; अब जो चाहे ईमान लाए और जो चाहे इंकार करे।” [सूरह अल-कहफ़ 18:29]

यह आयत स्पष्ट करती है कि ईमान का निर्णय मनुष्य के स्वतंत्र चयन पर आधारित है। इस्लाम सत्य को प्रस्तुत करता है, लेकिन किसी को उसे स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं करता।

33. सलफ़ का सर्वसम्मत दृष्टिकोण

प्रारंभिक मुस्लिम विद्वानों (सलफ़) ने “لَا إِكْرَاهَ فِي الدِّينِ” (धर्म में कोई जबरदस्ती नहीं) की व्याख्या करते हुए यही सिद्धांत स्पष्ट किया है कि लोगों को बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार कराना इस्लामी पद्धति नहीं है।

इमाम अत-तबरी, इमाम अल-बग़वी, इब्न कसीर, इब्न तैमिय्यह और अन्य प्रमुख विद्वानों ने इस बात

की पुष्टि की कि सत्य स्पष्ट हो जाने के बाद लोगों को विवेक और स्वतंत्र इच्छा के साथ निर्णय लेने दिया जाता है। इस्लाम का प्रसार मूलतः :

- दावत, शिक्षा, तर्क, नैतिक आचरण, न्याय, और अल्लाह के संदेश के माध्यम से हुआ। कुरआन बार-बार यही सिद्धांत प्रस्तुत करता है :
- “धर्म में कोई जबरदस्ती नहीं।” (2:256)
- “अपने रब के मार्ग की ओर हिकमत और उत्तम उपदेश के साथ बुलाइए।” (16:125)
- “आप केवल संदेश पहुँचाने वाले हैं।” (88:21-22)
- “जो चाहे ईमान लाए और जो चाहे इंकार करे।” (18:29)

नबी ﷺ का पूरा जीवन भी इसी सिद्धांत की व्यावहारिक व्याख्या है। उन्होंने लोगों के दिल जीते, उन्हें सत्य की ओर आमंत्रित किया, लेकिन किसी को तलवार की नोक पर मुसलमान बनाने का आदेश नहीं दिया।

प्रशासनिक उदाहरण (उमर, मिस्र, खालिद बिन वलीद आदि)

यह हिस्सा इस बात को समझाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है कि इस्लामी शासन में धर्म-परिवर्तन राज्य का लक्ष्य नहीं था, बल्कि प्रशासनिक न्याय और सुरक्षा प्राथमिक उद्देश्य थे।

उमर इब्न अल-खत्ताब (रज़ियल्लाहु अन्हु) का शासन मॉडल

खलीफ़ा उमर (रज़ि.) के शासन को इस्लामी प्रशासन का “सुनहरा शासन” माना जाता है।

(1) यरूशलेम का समझौता

जब 638 ई. में यरूशलेम मुस्लिम नियंत्रण में आया, तो वहाँ के ईसाई पितृ (Patriarch) सोफ़ोनियस ने स्वयं शहर की चाबियाँ उमर रज़ियल्लाहु अन्हु को सौंपीं।

उमर रज़ियल्लाहु अन्हु ने जो सुरक्षा-लेख दिया, उसमें शामिल था :

- ईसाई धर्म और चर्चों की सुरक्षा
 - धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी
 - किसी भी प्रकार की जबरदस्ती या उत्पीड़न का निषेध [इतिहास-ए-तबरी, फ़तूह अल-बुलदान]
- यह दर्शाता है कि विजय के बाद भी धर्म बदलने की कोई नीति लागू नहीं की गई।

▪ 2. चर्च में नमाज़ न पढ़ने का निर्णय

जब नमाज़ का समय हुआ, ईसाई नेताओं ने उन्हें चर्च के अंदर नमाज़ पढ़ने का आग्रह किया।

हिरा (इराक) के लोगों के साथ किए गए समझौते में स्पष्ट प्रशासनिक नीति दिखाई देती है :
खालिद रज़ियल्लाहु अन्हु के समझौते में शामिल था :

- वृद्ध, असमर्थ और गरीब लोगों से जिज्या माफ
 - ऐसे लोगों का खर्च मुस्लिम खज़ाने (बैतुलमाल) से देना
 - नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा [किताब अल-ख़राज (Abu Yusuf)]
- यह व्यवस्था आधुनिक “welfare state” जैसी अवधारणा के करीब मानी जा सकती है।
प्रशासनिक सिद्धांत : “धर्म अलग, नागरिक अधिकार समान”

प्रारंभिक इस्लामी प्रशासन का मूल सिद्धांत यह था :

- धर्म का चयन व्यक्तिगत स्वतंत्रता है
 - राज्य का कार्य सुरक्षा और न्याय देना है
 - कर (जिज्या/ज़कात) सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा है, धर्म परिवर्तन का दबाव नहीं
- इसलिए मुस्लिम शासन में:

- मुस्लिम → ज़कात देते थे
- गैर-मुस्लिम → जिज्या देते थे
- दोनों को सुरक्षा और अधिकार प्राप्त थे

ऐतिहासिक निष्कर्ष

यदि इस्लाम वास्तव में प्रशासनिक रूप से “जबरदस्ती धर्म परिवर्तन” लागू करता, तो :

- मिस्र, सीरिया और इराक में ईसाई समाप्त हो जाते
- यहूदी समुदाय अस्तित्व में नहीं रहते
- स्थानीय धर्मों का कोई रिकॉर्ड नहीं मिलता

लेकिन ऐतिहासिक तथ्य यह है कि :

- ईसाई समुदाय आज भी मौजूद हैं
- यहूदी समुदाय सदियों तक मुस्लिम क्षेत्रों में रहे
- धार्मिक विविधता लंबे समय तक बनी रही

34. उस्मानी साम्राज्य और यहूदी शरणार्थ

1492 ई. में स्पेन में अल्हाम्ब्रा डिक्री के बाद हजारों यहूदियों को स्पेन से निकाल दिया गया। उस समय बहुत-से यहूदी शरण की तलाश में विभिन्न क्षेत्रों में गए।
उस्मानी साम्राज्य ने उन्हें शरण दी।

उस्मानी सुल्तान बायज़ीद द्वितीय का कदम :

- यहूदियों को अपने राज्य में प्रवेश और बसने की अनुमति दी

- उन्हें व्यापार और जीवन जीने की स्वतंत्रता दी
- कई शहरों में उन्हें सुरक्षित समुदाय बनाने दिया [The Jews of the Ottoman Empire and the Turkish Republic]

इसका प्रशासनिक महत्व :

यह उदाहरण दिखाता है कि उस समय :

- मुस्लिम शासन ने धार्मिक उत्पीड़न से भाग रहे लोगों को शरण दी
- धार्मिक आधार पर निष्कासन नहीं किया गया
- विभिन्न धर्मों के लोग लंबे समय तक सुरक्षित रह सके

35. सहीफ़ा-ए-मदीना और धार्मिक सह-अस्तित्व

जब नबी ﷺ मदीना आए, तो उन्होंने केवल मुस्लिम समुदाय ही नहीं बनाया, बल्कि एक बहु-धार्मिक (multi-religious) नागरिक समझौता स्थापित किया, जिसे इतिहास में [\[1\]\[2\]\[3\]\[4\]\[5\]-\[6\]-\[7\]\[8\]\[9\]\[10\]](#) कहा जाता है।

इस दस्तावेज़ के अनुसार :

- यहूदियों को उनका धर्म स्वतंत्र रूप से मानने का अधिकार था
- मुसलमानों और यहूदियों को अलग-अलग धार्मिक पहचान दी गई
- दोनों समुदायों को सामाजिक और राजनीतिक सुरक्षा दी गई
- आपसी रक्षा और शांति व्यवस्था पर सहमति बनी

इसमें स्पष्ट सिद्धांत था :

“[\[1\]\[2\]\[3\]\[4\]\[5\]\[6\]\[7\]\[8\]\[9\]\[10\]\[11\]\[12\]\[13\]\[14\]\[15\]\[16\]\[17\]\[18\]\[19\]\[20\]\[21\]\[22\]\[23\]\[24\]\[25\]\[26\]\[27\]\[28\]\[29\]\[30\]](#)”

यह दस्तावेज़ इस बात का ऐतिहासिक प्रमाण है कि इस्लामी राज्य का मॉडल प्रारंभ से ही धार्मिक बहुलता (religious pluralism) को स्वीकार करता था।

36. नज़रान के ईसाइयों के साथ समझौता

नबी ﷺ ने नज़रान के ईसाइयों को मदीना आने पर धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की। उनके समझौते में शामिल था :

- उन्हें अपने चर्च और धार्मिक जीवन की स्वतंत्रता
- उनके धार्मिक नेताओं (पादरी, बिशप) की सुरक्षा

- अनेक क्षेत्रों में ईसाई, यहूदी, ज़रथुष्ट्री, हिन्दू और अन्य समुदाय सदियों तक अपने धर्म पर बने रहे।
- फिर भी विभिन्न कालों और क्षेत्रों में कुछ शासकों या स्थानीय अधिकारियों द्वारा दबाव, उत्पीड़न या बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन की घटनाएँ भी दर्ज हैं।
- इसलिए इन घटनाओं को पूरे इस्लाम की मूल शिक्षा या सभी मुस्लिम शासकों की नीति मानना उचित नहीं होगा।

यही कारण है कि आधुनिक इतिहासकार धार्मिक सिद्धांत (Islamic doctrine) और राजनीतिक व्यवहार (state practice) में अंतर करते हैं।

प्रसिद्ध इतिहासकारों की राय

प्रोफेसर थॉमस डब्ल्यू. अर्नोल्ड

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *The Preaching of Islam* में वे लिखते हैं कि इस्लाम का प्रसार केवल सैन्य विजय से नहीं हुआ, बल्कि दावत, व्यापार, सूफियों और सामाजिक संपर्क के माध्यम से भी हुआ।

उन्होंने लिखा कि व्यापक पैमाने पर बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन का सिद्धांत ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्ट नहीं होता।

प्रोफेसर मार्शल हॉजसन

उन्होंने लिखा कि इस्लामी साम्राज्य का विस्तार और इस्लाम का प्रसार दो अलग प्रक्रियाएँ थीं।

कई प्रदेश पहले मुस्लिम शासन में आए, जबकि वहाँ की अधिकांश आबादी ने इस्लाम कई पीढ़ियों बाद स्वीकार किया।

प्रोफेसर रिचर्ड बुल्लिएट

उन्होंने अपने शोध में दर्शाया कि ईरान जैसे क्षेत्रों में इस्लाम स्वीकार करने की प्रक्रिया लगभग दो से तीन शताब्दियों में धीरे-धीरे हुई, न कि विजय के तुरंत बाद।

यदि तलवार से तत्काल धर्म-परिवर्तन कराया गया होता, तो इतने लंबे समय की आवश्यकता नहीं पड़ती।

भारत के बारे में ऐतिहासिक संतुलन

भारत का इतिहास विशेष रूप से जटिल है।

इतिहास में ऐसे मुस्लिम शासक हुए जिन्होंने :

- मंदिरों को नष्ट कराया,
- राजनीतिक कारणों से धार्मिक प्रतीकों को लक्ष्य बनाया,
- कुछ अवसरों पर धर्म-परिवर्तन के लिए दबाव डाला।

वहीं दूसरी ओर :

- अनेक मुस्लिम शासकों ने हिन्दू अधिकारियों को प्रशासन में महत्वपूर्ण पद दिए।
- कई क्षेत्रों में स्थानीय धार्मिक संस्थाएँ कार्य करती रहीं।
- सूफी संतों और व्यापारियों के माध्यम से भी बड़ी संख्या में लोगों ने स्वेच्छा से इस्लाम स्वीकार किया।

इसलिए पूरे भारतीय इतिहास को केवल “तलवार” या केवल “शांति” से समझाना दोनों ही सरलीकरण होंगे।

स्पेन (अल-अन्दलुस) और धर्म

मुस्लिम स्पेन में कई शताब्दियों तक :

- ईसाई समुदाय मौजूद रहे।
- यहूदी समुदायों ने शिक्षा, व्यापार और प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- कई इतिहासकार इस काल को यहूदियों के लिए अपेक्षाकृत अनुकूल मानते हैं, यद्यपि समय और शासक के अनुसार परिस्थितियाँ बदलती रहीं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि मुस्लिम शासन का अर्थ हर स्थान पर एक जैसी धार्मिक नीति नहीं था।

यदि तलवार ही माध्यम होती...

यदि वास्तव में इस्लाम का प्रसार केवल बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन से हुआ होता, तो इतिहास में निम्न स्थितियाँ समझाना कठिन होता :

- मिस्र में कॉप्टिक ईसाई समुदाय का आज तक बने रहना।
- इराक और सीरिया में प्राचीन ईसाई समुदायों का सदियों तक अस्तित्व।
- भारत में हिन्दुओं का बहुसंख्यक बने रहना।

- ईरान में इस्लाम स्वीकार करने की प्रक्रिया का कई पीढ़ियों तक चलना।
- इंडोनेशिया और मलेशिया जैसे क्षेत्रों में बिना किसी बड़े मुस्लिम सैन्य विजय के इस्लाम का व्यापक प्रसार।

ये उदाहरण संकेत देते हैं कि विभिन्न क्षेत्रों में इस्लाम के प्रसार के कारण अलग-अलग थे—व्यापार, सामाजिक संपर्क, सूफ़ी परंपराएँ, राजनीतिक संरचनाएँ, विवाह, सांस्कृतिक प्रभाव और व्यक्तिगत आस्था—और केवल सैन्य विजय से उन्हें समझा नहीं जा सकता।

आलोचकों द्वारा उद्धृत आयतों का संदर्भ

कुछ आलोचक विशेष रूप से निम्न आयतों का उल्लेख करते हैं:

- सूरह अत-तौबा 9:5
- सूरह अत-तौबा 9:29
- सूरह अल-अन्फाल 8:39

इन आयतों को समझने के लिए आवश्यक है कि :

- उनका ऐतिहासिक संदर्भ (असबाब-ए-नुज़ूल) देखा जाए,
- उनसे पहले और बाद की आयतें पढ़ी जाएँ,
- प्रारम्भिक तफ़्सीरों का अध्ययन किया जाए।

उदाहरण के लिए, सूरह अत-तौबा 9:6 उसी प्रसंग में शरण माँगने वाले मुश्रिक को सुरक्षा देने और उसे सुरक्षित स्थान तक पहुँचाने का आदेश देती है। इससे स्पष्ट होता है कि इन आयतों का संबंध विशिष्ट युद्ध-परिस्थितियों से है, न कि सभी गैर-मुस्लिमों के लिए सार्वभौमिक बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन के आदेश से।

निष्कर्ष

कुरआन, सहीह सुन्नत और इतिहास को साथ रखकर देखने पर निम्न निष्कर्ष सामने आते हैं:

1. इस्लाम का मूल सिद्धांत है कि धर्म स्वीकार करना व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छा का विषय है।
2. नबी ﷺ का मिशन लोगों तक संदेश पहुँचाना था, न कि उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाना।
3. इस्लामी इतिहास में युद्ध हुए, पर युद्ध और धर्म-परिवर्तन समानार्थी नहीं हैं।
4. कुछ मुस्लिम शासकों द्वारा किए गए अन्याय या बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन के उदाहरण मिलते हैं, लेकिन उन्हें इस्लाम की मूल शिक्षाओं का प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता।
5. अधिकांश इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि इस्लाम का प्रसार विभिन्न कारणों—दावत, व्यापार, सामाजिक संपर्क, नैतिक आचरण, राजनीतिक संरचनाओं और कुछ क्षेत्रों में सैन्य

नबी ﷺ की सुन्नत

रसूलुल्लाह ﷺ ने :

- मक्का में 13 वर्ष बिना किसी सैन्य शक्ति के दावत दी ।
- अपने सबसे बड़े दुश्मनों को भी आम माफी दी ।
- गैर-मुस्लिमों के साथ समझौते किए ।
- यहूदियों और ईसाइयों को धार्मिक स्वतंत्रता दी ।
- महिलाओं, बच्चों, साधुओं और गैर-युद्धरत लोगों की हत्या से मना किया ।
- गैर-मुस्लिमों पर अत्याचार करने वालों के विरुद्ध क्रियामत के दिन स्वयं वादी बनने की चेतावनी दी ।

इन सभी घटनाओं से स्पष्ट होता है कि नबी ﷺ का तरीका दिलों को जीतना था, न कि लोगों को भय या तलवार के बल पर धर्म स्वीकार कराना ।

इतिहास क्या बताता है ?

इतिहास का रिकॉर्ड भी यही दर्शाता है कि :

- मुस्लिम साम्राज्यों का विस्तार हुआ ।
- लेकिन हर स्थान पर तत्काल धर्म-परिवर्तन नहीं हुआ ।
- अनेक समाजों में सदियों तक विभिन्न धर्म साथ-साथ मौजूद रहे ।

यदि राज्य-विस्तार का अर्थ अनिवार्य धर्म-परिवर्तन होता, तो :

- भारत में हिन्दू बहुसंख्यक न रहते ।
- मिस्र में कॉप्टिक ईसाई न बचते ।
- सीरिया और इराक के प्राचीन ईसाई समुदाय समाप्त हो जाते ।
- यहूदी समुदाय मुस्लिम शासन वाले अनेक क्षेत्रों में सदियों तक न टिकते ।

जहाँ गलतियाँ हुईं

इतिहास में कुछ मुस्लिम शासकों ने :

- राजनीतिक दमन किया,
- अन्याय किया,
- कभी-कभी धार्मिक दबाव भी डाला ।

